नीरज शर्मा

विद्रोहिणी

ई-मेल-drnirajssharma@gmail.com

पॉड्कास्ट के लिए स्टुडियो तैयार था। 'लेखक की कहानी लेखक की ज़ुबानी' कार्यक्रम में आमंत्रित थीं मशहूर लेखिका अनन्या सोढी।

एंकर और लेखिका दोनों बड़ी ही गर्मजोशी से मिलीं।

वार्तालाप शुरू करते हुए एंकर नीला ने उनका विस्तृत परिचय दिया और फिर शुरू हुआ सवाल-जवाब का दौर—

"लेखन पर बात करें, उससे पहले कुछ अपने बचपन और अपने आज के बारे में बताइए।" नीला ने बात शुरू की।

"मैं एक फौजी की बेटी और एक फौजी की ही पत्नी हूँ! बचपन से पढ़ने में बहुत होशियार तो नहीं, पर ठीक-ठाक थी। आपने वो कविता सुनी है न— कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती..."

"जी हाँ, सुनी है।" एंकर ने मुस्कराकर कहा।

"बस, मैंने उसे बचपन में ही अपने ज़ेहन में बसा लिया था या कहिए कि घोलकर पी लिया था।"

"बहुत खूब! इसकी झलक मिलती भी है आपके लेखन में...विद्रोह की भावना या यूं कहें कि एक आग-सी महसूस होती है। उस पर भी बात करेंगे। अच्छा, अभी ये बताइए कि आपने लिखना कब शुरू किया?" नीला ने उत्साहित होकर पूछा।

"जब मैं कक्षा आठ में थी, तब मैंने पहली कविता लिखी थी।"

"आपको लिखने की प्रेरणा अपने घर में किसी से मिली या विद्यालय में अपने शिक्षकों से?"

"घर में लिखने-पढ़ने का माहौल नहीं था। माँ कम पढ़ी-लिखी थीं और पिताजी सरहदों पर तैनात रहते थे; पर हाँ, एक शिक्षिका मेरे लेखन के लिए परोक्ष रूप से प्रेरक अवश्य रहीं।"

"परोक्ष...रू...प से... मैं समझी नहीं।"

अनन्या ने पर्स में से पॉलिथीन का छोटा-सा पाउच निकाला। उसमें से कागज़ के टुकड़े निकालकर हथेली पर रखे और दृढ़ता से कहा, "ये रहे मेरी प्रेरणा के परोक्ष स्रोत! मेरी एक शिक्षिका ने मेरी पहली रचना को फाड़कर मेरी मुट्ठी में थमा दिया था। बस, वहीं से सुलग उठी थी आग, और-और रचने की!"

अटूट विश्वास

नीरज शर्मा

एक लंबा गलियारा था जो खत्म होने का नाम नहीं ले रहा था। गलियारे से मानो रोशनी की दुश्मनी थी। समानांतर चल रही दुर्गंध से बजबजाती नालियाँ नथुनों को साँस रोक लेने को विवश कर रही थीं। अधिकतर दरवाजों पर टाट के फटे मैले-कुचैले पर्दे टंगे थे। एक अजीब-सी गंध वातावरण में तारी थी। घर के बाहर दरवाजे व सीढ़ियों के किनारे सब्जियों और अंडों के छिलके, खाए हुए माँस-मच्छी के टुकड़े व घरेलू कचरे के ढेर-से पटे पड़े थे। जुगुप्सा-सी जाग गई मन में। एक अनजाना-सा भय भी समाया हुआ था डॉ सुमित के मन में, पर उस पर हावी वह भावना भी थी जो उन्हें आगे की ओर धकेल रही थी।

गाँव-गाँव, शहर-शहर साम्प्रदायिक दंगों के माहौल में सब ओर तनावपूर्ण स्थिति थी। गाँव में सबने किसी भी अनहोनी को रोकने के उद्देश्य से तय किया था कि दिन छिपने के बाद कोई भी दूसरे समुदाय के मोहल्ले में नहीं जाएगा।

सब-कुछ जानते-बूझते भी सिराजुद्दीन इधर आया था और सबके मना करने के बावजूद सिराजुद्दीन के अनुनय-विनय को डॉ सुमित टाल नहीं पाए थे।

उन्होंने सबको सदैव अपना ही समझा था; फिर वह किसी भी समुदाय, किसी भी जात-बिरादरी का हो, सज्जन या चोर-डकैत हो, उन्हें दीन-दुखियों की सेवा से ही मतलब रहा था।

गलियारे में कई मोड़ों से गुजरते हुए आखिर वह कोठरिया आ ही गई जहाँ एक बूढ़ी महिला, बीच से ढीले, नीचे लटके बान के झिंगोले में धँसी खाँस रही थी।

डॉक्टर सुमित को देखते ही उसकी ललाई आँखों में उम्मीद की किरण जगमगाई। लगातार खाँसने से जबान अटक गई थी। मूक याचना करते कँपकँपाते उसके हाथ जुड़ गए थे।

डॉक्टर सुमित ने उसका सुपरफिशियल मुआयना किया। नब्ज़ देखी, फिर स्टैथोस्कोप लगाकर काफी देर तक वक्ष के भीतर की खराश और साँसों के उतार-चढ़ाव को कानों से पढ़ा। अब तक उनकी खुद की धड़कन भी कुछ सँभल चुकी थी। अपने साथ बॉक्स में रखी दवाइयों में से निकालकर डेरीफाइलीन का इंजेक्शन लगाया। कुछ दवाइयाँ दीं व खानपान की हिदायत देकर चलने लगे।

सिराजुद्दीन ने दवाइयों का बॉक्स उनके हाथ से लिया व उनके अस्पताल तक सुरक्षित पहुँचा दिया।

अस्पताल में साँस रोककर बैठे लोगों की जान में जान आई, डॉक्टर सुमित को सुरक्षित लौटता देखकर।

“आपको हमारी बात माननी चाहिए थी डॉक्टर साहब!” सिराजुद्दीन के जाते ही लोगों ने शिकायती स्वर में कहा।

“आप क्या समझते हैं, डॉक्टर और मरीज़ के बीच के रिश्ते को ऐसी घटनाएँ डिगा पाएँगी?“ डॉक्टर सुमित ने उनसे पूछा और अपने काम में लग गए।

नीरज शर्मा

शॉक

छोटे शहर के एक प्राईवेट अस्पताल के बाहर दसों ट्रैक्टर-ट्रॉलियाँ व मोटर-साइकिलें बेतरतीबी से खड़ी थीं। भीड़ में कोलाहल, गहमा-गहमी चरम पर थी। गाँव की एक बहू डिलीवरी के लिए लाई गई थी।

कई घंटे दाई ने भरपूर ज़ोर आज़माई की और आखिर में हथियार डाल दिए तो शहर के अस्पताल लाना पड़ा। गर्भिणी के शरीर से लालिमा नदारद थी। वह प्रसव पीड़ा के आतंक से बुरी तरह पस्त थी।

गर्भस्थ शिशु व महिला की जान बचाने के लिए ऑपरेशन तुरंत करना ज़रूरी था। महिला डॉक्टर ने महिला के घरवालों से खून की कम-से-कम दो बॉटल का तुरंत इंतज़ाम करने के लिए कहा। उनकी बात सुनकर बाहर खड़े शुभचिंतकों में खुसुर-फुसुर शुरू हो गई।

तभी गाँव के 'मास्टर साब' ने डॉक्टर के केबिन में प्रवेश किया।

"मैडम जी! ये तौ सारे ठहरे कुपढ़, इनमें सै कोई ना देन वाला अपना खून। आपई करा द्यो कहीं सै इंतजाम।"

"देखिए, ब्लड की व्यवस्था तो आप लोगों को करनी ही पड़ेगी। मरीज़ का ब्लड ग्रुप 'एबी पॉज़िटिव' है। सब अपना-अपना ब्लड टैस्ट करवाइए, किसी न किसी का ब्लड ग्रुप ज़रूर मिलेगा। मरीज़ की हालत को समझिए, देर न कीजिए। ब्लड मिलेगा तब ही ऑपरेशन किया जा सकेगा। यहाँ कोई ब्लड बैंक नहीं है, जहाँ से मैं अवेलेबल करा सकूं।" डॉक्टर ने समझाया।

"वो तो ठीक है, पर इनके तो खुद घरवालेई खून टैश्ट कराने को तैयार ना हैं! फेर भार वाला कोई क्यों करवावैगा!"

"इतने सारे लोग साथ आए हैं! और आप तो 'मास्टर साब' हैं। जाकर समझाइए कि एकाध बॉटल खून देने से किसी का कुछ नहीं बिगड़ता।"

"खून देन का नाम सुनतेई धीरे-धीरे खिसक लिए जी सारे के सारे।"

"तो आप तो समझदार हैं, आप ही टैस्ट करा लीजिए।"

"पर मेरा बिलड ग्रुप ना मिलता जी इनसे।"

"अच्छा! कौन-सा ब्लड ग्रुप है आपका?"

"मेरा बिलड ग्रुप तो 'ऐस्सी' है जी।"